ये छोटे-छोटे पुस्तकालय

जॉन होल्ट
अनुवाद: पुष्पा अग्रवाल

पढ़े-लिखे लोगों का एक समाज बनने की चौतरफा कोशिशें हो रही हैं। इन कोशिशों के बीच देखिए एक कोशिश – जॉन होल्ट – के इस लेख के ज़रिए। बड़े नगरों और बड़े लोगों को हासिल तमाम सांस्कृतिक सुविधाएं एक तरफ हैं। लेकिन यहां तो बात हो रही है छोटे-छोटे कस्बों, गांवों, मोहल्लों की। यहां के गरीब तबकों में साक्षरता और सांस्कृतिक विकास ठीक किन-किन माध्यमों से, कितनी आसानी से और कम खर्च में बढ़ सकता है। वह भी स्कूलों के ज़रिए नहीं, अनोखे छोटे-छोटे पुस्तकालयों के ज़रिए।

जिस पुस्तकालय की यहां बात हो रही है वह हमसे स्कूलों की तरह यह नहीं कहता कि हमें उसका इस्तेमाल करना चाहिए या ऐसा करना हमारे लिए अच्छा होगा और नहीं करने से बुरा होगा। पुस्तकालय तो विद्यमान है – अगर हमारी इच्छा हो तो हम इसका इस्तेमाल कर सकते हैं, और जब चाहें जैसे चाहें कर सकते हैं। पुस्तकालय में जाते समय प्रवेश द्वार पर हमें जांचा नहीं जाता कि हम कितने होशियार हैं। कोई पुस्तकालय यह दावा भी नहीं करता कि यह अन्य पुस्तकालयों से बेहतर हैं चूंकि यहां सिर्फ काबिल लोगों को ही प्रवेश दिया जाता है। जब एक बार हम अंदर चले जाते हैं तो

पुस्तकालय हमें यह नहीं बताता कि हमें वहां क्या करना है। वहां हमारा इम्तिहान नहीं होता, हमें ग्रेड, रैंक आदि नहीं दिए जाते, और न ही हमारी कोई फाइल वहां बनाकर रखी जाती।

फिलहाल तो पुस्तकालय जिन कामों में हमारी मदद कर सकता है वे काफी सीमित है। लाइब्रेरी किताबों और अन्य लिखित रिकार्ड को रखने का एक स्थान मात्र हुआ करती थीं। जो प्रायः स्कूलों से जुड़ी होती थीं ताकि लोग, खासकर शिक्षक और बच्चे, वहां जाकर अपने काम से संबंधित सामग्री को देख सकते थे।

ज़्यादातर लोग उन सभी चीज़ों को नापसन्द करने लग जाते हैं जो उन्हें स्कूल में करनी पड़ती हैं (इसमें पढ़ना भी शामिल है); और स्कूल छोड़ने के बाद वे उनसे दूर ही रहना चाहते हैं इसलिए पुस्तकालय में भी नहीं जाते। लेकिन अब परिवर्तन की शुरूआत हो गई है। पुस्तकालय अब पहले से ज़्यादा कई ऐसे कार्य कर रहें हैं जो इनके द्वारा किए जा सकते हैं।

बहु आयामी पुस्तकालय

एक पुस्तकालयाध्यक्ष – ने कुछ समय पहले अपने एक लेख 'न्यू डायरेक्शन्स फॉर पब्लिक लाइब्रेरीज' (जन पुस्तकालयों के लिए नई दिशाएं) की एक प्रति मुझे भेजी थी।

इस लेख में वे सुझाव देते हैं कि पुस्तकालय की शाखाएं, किताबें जमा कराने के स्थान और पुस्तक-डाक सेवा हरेक प्रांत, ज़िले, शहर और हर प्रकार के रिहायशी इलाकों में होनी चाहिए। पुस्तकालय को हर तरह की श्रवण-दृश्य (ऑडियो-विजुअल) सामग्री, जैसे टेप रेकार्ड, फिल्में, स्लाइड, वीडियो टेप वगैरह को सूची पत्र (कैटलॉग) बनाकर रखना चाहिए

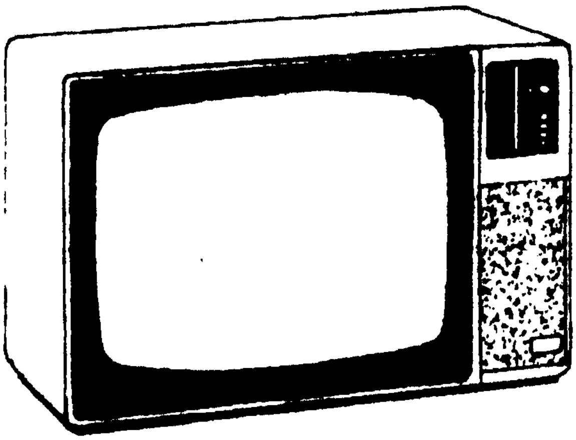

और लोगों को उपलब्ध करवानी चाहिए। जहां लोग काम करते हों वहां पुस्तकालयों को शाखाएं खोलनी चाहिए।

पुस्तकालय विचारों के लेन-देन को बढ़ावा दे सकते हैं – लोगों को छोटी-छोटी प्रिंटिंग प्रेस, फिल्म लेने के लिए कैमरे, रिकार्ड करने के लिए टेप रिकार्डर, हर प्रकार की डुप्लिकेटिंग के लिए हर प्रकार के डुप्लीकेटर, पुस्तकालय में ही इस्तेमाल के लिए उपलब्ध करवा कर या बिना किसी शुल्क के इस्तेमाल के लिए देकर और उन्हें इस तरह का बढ़ावा देना चाहिए।

वो पुस्तकालयाध्यक्ष आगे कहते हैं –"मैं उस डुप्लिकेशन की बात नहीं कर रहा हूं जो कॉपीराइट का उल्लंघन है, यानी पहले से प्रकाशित सामग्री का डुप्लिकेशन। मैं तो बात कर रहा हूं छुपे हुए रचनाकारों इत्यादि के काम के डुप्लिकेशन की, हर प्रकार की संस्थाओं और व्यक्तियों को निशुल्क प्रेस उपलब्ध करवाने की।

जहां तक आवाज़ सुनी जा सके उस परिधि के बाहर के लोग अगर उस वाणी को सुन, देख, बोल या पढ़ न सकें तो स्वतंत्र बोलने के अधिकार का कुछ खास अर्थ नहीं रह जाता। हमारी एकाधिकृत मास मीडिया संस्कृति में विचार का विस्तार और विकेन्द्रीकरण करने के साधनों की अत्याधिक आवश्यकता है।"

यह तो हुई उन पुस्तकाध्यक्ष की लेकिन हमने तो यह सीखा है, या हमें यह सोचना सिखाया गया है, कि प्रेस की स्वतंत्रता का अर्थ है कि पत्र-पत्रिकाएं जो छापना चाहें वह छापें। इस हक का भी पक्ष लिया जा सकता है क्योंकि इसका भी फायदा जनता को मिला है, लेकिन यह प्रेस की स्वतंत्रता का वह अर्थ नहीं है जिसकी कि शुरूआत

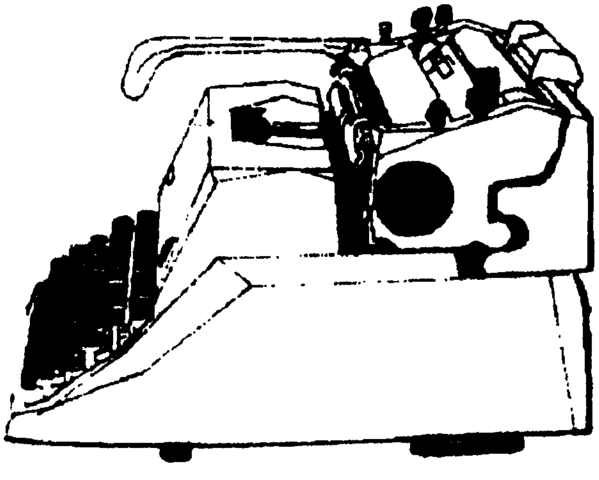

में कल्पना की गई थी। वो थी प्रेस चलाने की स्वतंत्रता, यानी अपने विचारों का छाप सकने और फैला सकने की स्वतंत्रता।

कला-संस्थानों के एवज में

ग्रामीण क्षेत्रों में और कस्बों में, जिनकी आबादी 30,000 से कम हैं (जो कॉलेज की गरिमा से वंचित हैं) या नगरों की नई बसावट (सबर्ब) में तो नाना प्रकार के सांस्कृतिक संस्थानों को चला पाना संभव नहीं है इसलिए संस्कृति के एक ही घर का होना वास्तव में अर्थ रखता है।

ज़्यादातर लोगों के पास साजों पर अभ्यास करने के लिए या पेन्ट करने के लिए या लकड़ी, धातु, सिरेमिक आदि का काम करने के लिए जगह भी नहीं होती, इनके लिए आवश्यक उपकरण जुटा पाने की बात तो दूर की है। बड़े शहरों में कुछ ऐसे स्थान होते हैं जहां फीस देकर ये काम किए जा सकते हैं। लेकिन ये अधिकांश लोगों के निवास से काफी दूर होते हैं, और महंगे भी इतने होते हैं कि कम ही लोग इनका फायदा उठा पाते हैं। छोटे नगरों और उपनगरों में ऐसे साधन बिल्कुल नहीं होते। फिर क्या ताज्जुब कि बहुत सारे लोग टी. वी. जैसे निष्क्रिय मनोरंजन के लिए विवश हो जाते हैं। उनके लिए करने को और अधिक कुछ होता ही नहीं।

पुस्तकालय को खिलौने, खेल, प्रारम्भिक वैज्ञानिक उपकरण, कैमेस्ट्री और इलेक्ट्रॉनिक किट, खेलों के उपकरण, रैकेट और ऐसी अन्य चीज़ें रखनी चाहिए और लोगों का उपलब्ध करवानी चाहिए। मध्यम और

धनी वर्ग के बच्चे अपने खिलौने और खेलों से बहुत-सी बातें सीखते हैं। गरीब बच्चों के पास इस तरह की चीज़ें होती ही नहीं या बहुत ही कम होती हैं। अधिकतर अमीर बच्चों के पास ज़रूरत से कहीं ज़्यादा खिलौने होते हैं। जिनका कि वो कभी इस्तेमाल नहीं करेगें। पुस्तकालयों में एक ऐसी जगह क्यों न बनाई जाए जहां इन चीज़ों को एकत्र करके रखा जा सके, और पुस्तकालयों के अपने स्वयं के खरीदे गए सामान के साथ उन्हें भी उधार दिया जा सके? हमारे आधुनिक समाज में बहुत-सी चीज़ें बेकार हो जाती हैं। पुस्तकालयों का ऐसी जगह के रूप में क्यों न विस्तार किया जाए वहां इन चीज़ों को रखा जाए, उनका उपयोग किया जाए?

रीडिंग गाईड

मैंने सुझाव दिया है कि ऐसे कुछ व्यक्ति हों जिनको कि रीडिंग गाईड या 'पढ़ने में सहायक' कहा जा सकता है। ये स्वयंसेवक होंगे। ऐसे कोई भी व्यक्ति 'पढ़ने में सहायक' हो सकते हैं जो रोज़ाना बच्चों के और अन्य न पढ़ सकने वालों के सम्पर्क में आते हों, जैसे कॉलेज-स्कूल के विद्यार्थी, गृहणियां, वृद्ध तथा रिटायर्ड लोग, पुस्तकाध्यक्ष, चाय की दुकान चलाने वाले – अगर वो पढ़ना जानते हों। इन सहायकों को कोई पहचान चिह्न जैसे कि बांह पर पट्टा या बटन पहनना होगा ताकि जो लोग कोई सूचना चाहते हों वे इन्हें आसानी से पहचान सकें। यह स्पष्ट हो कि जब किसी सहायक ने अपना चिह्न पहन रखा है तो कोई भी जो चाहे उससे एक या दो प्रकार के प्रश्न पूछ सकता है। वह कोई लिखा हुआ शब्द

दिखाकर पूछ सकता है, "यह क्या है?" और सहायक उसे बता देगा; या वह पूछ सकता है, "फलां-फलां शब्द को कैसे लिखते हैं?" और सहायक उसे लिखकर बता देगा। सहायक को सिर्फ इतना ही करना है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

इस तरह का प्रोग्राम चलाने में कुछ भी खर्च नहीं आएगा। यह बिल्कुल भी ज़रूरी नहीं कि सहायक से जो भी शब्द पूछे जाएं, सभी उसे लिखने या पढ़ते आते हों। उससे पूछे जाने वाले अधिकतर शब्द काफी आसान होंगें, फिर भी अगर वह किसी शब्द को नहीं जानता हो तो कह सकता है, मैं यह शब्द नहीं जानता, तुम्हें किसी अन्य सहायक से पूछना होगा।

स्कूल या अभिभावकों का ग्रुप या विद्यार्थी स्वयं ऐसा प्रोग्राम शुरू कर सकते हैं। अभी तक तो मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता जिसने मेरा सुझाव मानकर ऐसा प्रोग्राम शुरू किया हो। शायद वक्त के साथ, जैसे-जैसे स्कूलों के प्रोग्राम अधिक खर्चीले होते जाएंगे तथा असफलता को और भी ज़्यादा प्राप्त होने लगेंगे, तब कोई इस प्रोग्राम को शुरू करे। अगर ऐसा होता है तो ऐसे प्रोग्राम को करने के लिए एक आधार, एक जगह की आवश्यकता होगी। और पुस्तकालय यह सब करने के लिए एक बेहतर स्थान होगा।

चलते-फिरते पुस्तकालय

आमतौर पर पुस्तकालय की छोटी-से-छोटी शाखाओं को सारे शहर में सघनता से फैलाना तो बहुत खर्चीला काम होगा।

शहर के सबसे भीड़-भाड़ वाले क्षेत्रों में, जहां ज़्यादातर गरीब लोग रहते हैं, उनकी जो आवश्यकता है – वो हैं लघु पुस्तकालय; और यह हमारे पास अब तक नहीं हैं। जहां परम्परागत पुस्तकालयों की कीमती संदर्भ सामग्री

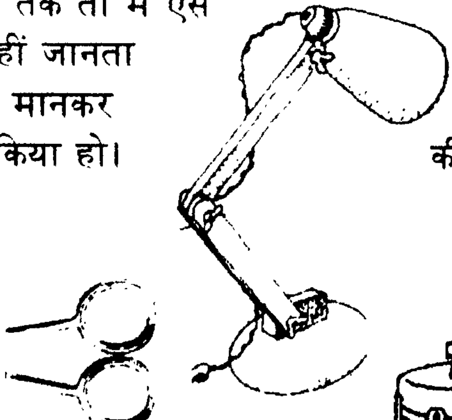

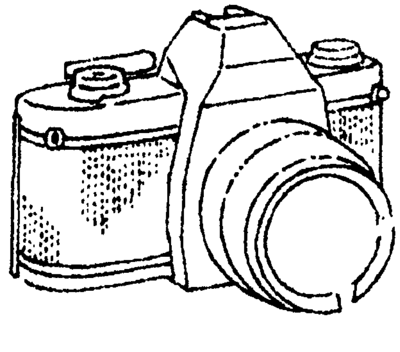

और लम्बी-चौड़ी फाइलें न हों, वरन समाचार पत्रों, मैगज़ीनों और पेपर बैंक पुस्तकों के भंडार हों। यह बहुत छोटी जगहों में भी बन सकते हैं जैसे, किसी दुकान के एक हिस्से में या किसी के घर के तलघर में। हम इस सामग्री को पुराने ट्रक या बस में रखकर किसी निर्धारित समय पर एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार समीप की कॉलोनी में एक ब्लॉक से दूसरे ब्लॉक ले जा सकते हैं। इस तरह लोगों को पता रहेगा कि उनके और बच्चों के उपयोग के लिए लघु पुस्तकालय महीने और सप्ताह के किन-किन दिनों में आएगा और वे आसानी से इसका इस्तेमाल कर सकेंगे।

इस प्रकार के कुछ सचल पुस्तकालय चल भी रहे हैं। इन्हें 'पुस्तक वाहन' भी कहा जाता है। कुछ पुस्तक वाहन इतने शानदार और खर्चीले होते हैं कि पूरे शहर में इनके सघन विस्तार का खर्च वहन कर पाना सम्भव नहीं हैं। मैंने पता किया है कुछ 'पुस्तक-वाहनों' की लागत 15,000 डॉलर (लगभग 6 लाख रुपए) से भी अधिक है। इस काम को इससे भी कम कीमत पर किया जा सकता है। मैं एक साधन सम्पन्न और कल्पनाशील महिला डॉरलीन एरथा के बारे में बताना चाहता हूं। कुछ वर्ष पहले वे एक ग्रामीण क्षेत्र में रहती थीं जहां कुछ ही पुस्तकालय थे और लोगों के पास पढ़ने को बहुत कम सामग्री उपलब्ध थी। उन्होंने इस बारे में कुछ करने का निश्चय किया। उन्हें एक पुरानी स्कूल बस दी गई जिसकी कीमत 800 डालर थी 500 डालर में उन्होंने इसमें मरम्मत आदि

कराई। करीब 100 डालर और खर्च करके उन्होंने स्वयं तथा मित्रों की सहायता से सीटें आदि निकाल कर बस को पुस्तकालय तथा पेपर बैक बुक स्टोर में बदला। इसका नाम उन्होंने 'दी बुकवर्म' (किताबी कीड़ा) रखा। बस पर दोनों ओर एक बड़ा हरे रंग का कीड़ा पेन्ट किया गया गाड़ी की आगे की बत्तियां जिसकी आखें थीं। कई वर्षों तक, जब तक वे वहां से चली नहीं गई, उस वाहन को उस क्षेत्र के बहुत से गांवों में निश्चित कार्यक्रमानुसार ले जाती रहीं।

एक बार जब हम इस विचार से उबर जाते हैं कि हरेक चीज़ एकदम नई हो और खासतौर पर बनाई गई हो, तब हम कम खर्च में गांवों और शहरों, दोनों के लिए इस तरह का कुछ अनोखा करने की सोच सकते हैं। ऐसी बहुत-सी पुरानी बसें और ट्रक हैं जिनका इस प्रकार काया-पलट किया जा सकता है। कई सरकारी विभाग व अन्य संस्थाएं अपनी पुरानी ट्रकों या बसों आदि की बिक्री की घोषणा करते रहते हैं। इनमें से कई वाहन लघु पुस्तकालयों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं। बहुत से लोग यह काम कर सकते हैं, और करना पसंद भी करेगें। मैं फिर से कहूंगा कि ऐसे कार्यक्रम बहुत सारे गरीब लोगों को अमीर तो नहीं बना देंगे, या नौकरियां तो नहीं दे देंगे लेकिन ये उनके जीवन को अधिक रुचिकर बना सकेंगे। जिनसे उनका समुदाय और आस-पड़ोस का वातावरण रहने के लिए बेहतर बन सकेगा।

लोकप्रिय प्रेस

यह एक ऐसा विचार है जिसके बारे में मैं कुछ समय से सोच रहा हूं और छोटे स्तर पर इस दिशा में कुछ कार्य भी कर रहा हूं। कुछ वर्षों से अपने कार्यालय में हम, 'पिंचपेनी प्रेस' के नाम से एक छोटी-सी प्रेस चला रहे हैं। शिक्षा तथा अन्य विषयों से सम्बन्धित लेख, जो हम सोचते हैं कि लोगों के लिए लाभकारी है, छोटे आकार में काफी संख्या में पुनः प्रकाशित करके इन्हें लोगों को निःशुल्क या कीमत लेकर भेजते रहे हैं। एक लेख की हमने 50,000 प्रतियां तक भेजीं। इसके लिए हम छपाई की व्यावसायिक मशीनों का प्रयोग करते हैं। इस क्षेत्र में तो टेक्नोंलॉजी ने कुछ ऐसी मशीनों को ईज़ाद किया है जिनका जन साधारण भी अपने कामों के लिए इस्तेमाल कर सकते है। आजकल शहरों में फोटोकॉपी की ऐसी मशीनें आसानी से उपलब्ध होती हैं जिनमें छपी सामग्री के आकार को 40 प्रतिशत तक छोटा

या बड़ा किया जा सकता है। इससे प्रकाशन बहुत से लोगों की पहुंच में आ गया है।

आमतौर पर हम ध्यान नहीं देते लेकिन इन संख्याओं की ओर ध्यान दीजिए 21सेमी. x 29 सेमी. (A-4 साइज़) के पूरे भरे हुए पन्ने पर टाइप की हुई सामग्री के लगभग एक हज़ार शब्द आ जाते हैं। इस मशीन से इस आकार को इतना छोटा किया जा सकता है कि इसके दोगुने से अधिक शब्द एक पन्ने पर आ जाएं।

एक पेज के दोनों ओर लगभग 4000 शब्द हम प्राप्त कर सकते हैं। पत्रिकाओं के लेख भी करीब इतने ही लम्बे होते हैं। और 20 पन्नों के दोनों ओर लगभग 80,000 शब्द आ जाते हैं जो कि एक अच्छी खासी, किताब के बराबर हैं। और जिसकी कीमत आठ रुपये से कुछ ज़्यादा की आती हैं दूसरी ओर अधिकतर किताबें तो इससे कहीं ज़्यादा कीमत की आती हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति अगर कुछ कहना चाहे, तो व्यावसायिक प्रिंटिंग मशीन इस्तेमाल करके भी, पेपर बैक की कीमत में या उससे भी कम में अपनी पुस्तक प्रकाशित करवा सकता है। ये पुस्तक बहुत सुन्दर तो नहीं दिखेगी और इसे पाठकों तक पहुंचाने के लिए कोई रास्ता भी खोजना पड़ेगा। लेकिन ये समस्याएं अलग हैं और इनके हल निकाले जा सकते हैं।

इस तरह की सुविधाएं लोगों को पुस्तकालयों में निःशुल्क उपलब्ध कराई जा सकती हैं। पुस्तकालयों के पास बिजली के टाईप राइटर और कम्पोजिंग मशीन हों, जिन पर लोग अपनी मूल प्रति बना सकें।

व्यावसायिक प्रकाशकों का लक्ष्य होता है, अधिक विस्तृत बाजार। लेखक यदि अपना लेख या किताब प्रकाशित करने के बाद व्यावसायिक प्रकाशक को बताएगा कि अभी तक बहुत से लोगों ने उसकी पुस्तक खरीदी है, तो वह प्रकाशक उस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिए तैयार हो सकेगा।

इस प्रकार की स्वतंत्र प्रेस वक्त के साथ, निर्धन आय वर्ग के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकती है। ये समुदाय पूर्णतः मास प्रिंट मिडिया से बाहर होते हैं और इतने बड़े तथा अमीर भी नहीं होते कि अपनी स्वयं की व्यावसायिक प्रेस लगा सके। इसलिए इनकी अपनी कोई आवाज़ नहीं होती जिससे वे आपस में और बाहर की दुनिया से बात कर सकें। यह इनको अलग-थलग रह जाने,

और राजनीतिक रूप से टूटा हुआ और कमजोर बनाने में तथा बने रह जाने के लिए मजबूर करता है।

अगर उनके पास उनके सार्वजनिक मामलों पर एक-दूसरे से बात करने, और बाहर की दुनिया को बताने के तरीके होंगे तो वे कहीं ज़्यादा एकरूप होंगे और उनका राजनीतिक और आर्थिक प्रभाव भी अधिक होगा। इस समुदाय के लोग अक्सर शिकायत करते हैं कि उनके बच्चों को स्कूल में ऐसी पाठ्य-सामग्री पढ़नी पड़ती है जो मध्यम वर्गीय, नगरीय जीवन और संस्कृति से निकली हुई होती हैं, जिन्हें उनके बच्चें नहीं जानते। एक स्वतंत्र लोकप्रिय सहज प्रेस पहुंच में होने पर इनके बच्चों के लिए स्कूल में पढ़ने के लिए लाभप्रद, सार्थक और मनोरंजक सामग्री होगी।

हो सकता है प्रारम्भ में कुछ मूल-पाठ ज़्यादा अच्छे न हों। उस हालात में लोग उस पाठ्य पुस्तक को काम में लाना रोक सकते हैं और उसके लेखक को बता सकते हैं कि उसमें क्या गलत है, और यह सुझाव भी दे सकते हैं कि उसे अधिक उपयोगी बनाने के लिए उसमें क्या परिवर्तन किया जाए। एक बार लोग अगर इस विचार का समझ लेते हैं कि कोई भी अपने विचार दूसरों के पढ़ने के लिए छाप सकता है तो यह बात आधुनिक समाज में बड़ा परिवर्तन ला सकती है। और इस तरह की लोकप्रिय प्रेस लोगों की पढ़ने लिखने की रुचि को बढ़ाने में कितने भी स्कूलों के कोर्स से कहीं अधिक मदद करेगी।

जॉन होल्ट: दुनिया के प्रसिद्ध शिक्षाविद। होल्ट सारी ज़िंदगी एक ऐसे स्कूल की तलाश में रहे जहां बच्चों की प्राकृतिक प्रतिभाओं को फलने फूलने का मौका मिलता हो। 1975 से होल्ट, स्कूल में बदलाव लाने के बजाए 'स्कूल बंद करो' के पक्षधर हो गए। उन्होंने कई किताबें लिखीं। 14 दिसंबर 1985 को जॉन होल्ट का देहांत हो गया। (जॉन होल्ट की जीवनी संदर्भ के 10वें अंक में प्रकाशित)।

पुष्पा अग्रवाल: जयपुर में रहती हैं, स्वतंत्र रूप से अनुवाद के काम में सक्रिय।